ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-7* September- 2020
Innovation The Research Concept

दशकुमारचरित में वर्णित धार्मिक आस्था एंव विश्वास

Religious Faith and Belief mentioned in Dashkumarcharit

Paper Submission: 12/09/2020, Date of Acceptance: 27/09/2020, Date of Publication: 28/09/2020

अनुपम सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास विभाग,
अखिल भाग्य पी0जी0 कालेज,
रानापार, गोरखपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

''दशकुमारचरित'' महाकवि दण्डी का एक प्रसिद्ध गद्यकाव्य है। इसकी रचना सातवीं सदी ई0 में हुई थी। इस काल में देवी–देवताओं तथा सम्प्रदायों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। दण्डीकालीन समाज में हिन्दू धर्म ही सामान्यतः प्रचलित धर्म था जिसमें विष्णु, शिव और दुर्गा की उपासना को अधिक महत्व दिया जाता था। इस समय हिन्दू धर्म में वैष्णव और शैव धर्मो का प्रचार–प्रसार पर्याप्त हो चुका था। सृष्टि की आदिशक्ति स्वरूपा देवी की पूजा का भी प्रचलन हो गया था। हिन्दू धर्म में त्रिदेव (ब्रह्म, विष्णु, महेश) को प्रमुखता दी गई। सम्प्रदायों में भी वैष्णव, शैव और शाक्त ही अधिक प्रचलित हुए और इन्हीं के सिद्धान्तों के आधार पर हिन्दू धर्म का विकास, प्रचार और प्रसार हुआ। बौद्ध, जैन आदि धर्म भी विद्यमान थे परन्तु सामान्य जन–जीवन में उनका प्रभाव नहीं था।

"Dashkumarcharit"is a famous prose of Mahakavi Dandi. It was composed in the seventh century AD. During this period there was an unprecedented increase in the number of deities and cults. Hinduism was the most commonly practised religion in Dandi society in which the worship of Vishnu, Shiva and Durga was given more importance. At this time ,the propagation of Vaishnavism and Shaivism in Hinduism had become sufficient. Worship of goddess adishakti swaroopa of the world was also practised .In Hinduism ,Tridev (Brahma,Viahnu,Mahesh) gave prominence. Vishanavism Shaiva and Shakta became more prevelent among the sects and Hinduism developed ,propagated and spread on the basis of these principals. Buddhism, Jainism etc. religions also existed but they did not have influence in normal life.

मुख्य शब्द : दशकुमारचरित, दण्डी, हिन्दू , धर्म, ब्रह्म , विष्णु ,शिव , दुर्गा।
Dashkumarcharit,Dandi,Hinduism,Brahma,Vishnu,Shiva,Durga

प्रस्तावना

मानव जीवन में धर्म का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि धर्म के बिना अन्य किसी पुरूषार्थ का सफल संचालन सम्भव नहीं है। 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है धारण करना। महाभारत के अनुसार धारण करने को धर्म कहते हैं। धर्म प्रजा को धारण करता है। इस अर्थ के अनुसार यह कहा जा सकता है कि धर्म प्राणियों की रक्षा करता है अर्थात नैतिक नियमों और सदाचारों की ऐसी संहिता, जिसके पालन से सभी प्राणियों के हितों की रक्षा हो, धर्म है। वैदिक ऋषियों ने इसी संहिता के रूप में 'ऋ' की अवधारणा विकसित की थी, जो सांसारिक नैतिक विधि–विधानों की व्यवस्था से सम्बद्ध था, कालान्तर में वही धर्म नाम से जाना गया। वस्तुतः धर्म आचरण की संहिता है। जीवन की ऐसी विधि जो नैतिक आचरण से सम्बद्ध हो और जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज के सदस्य रूप में, एक व्यक्तित्व के रूप में नियंत्रित होता हुआ क्रमशः विकसित होता है और अन्त में चरम उद्देश्य की प्राप्ति करता है।

मनु के अनुसार धर्म के आधारस्रोत श्रुति (वेद), स्मृति (उपनिषद), सदाचार और आत्मतुष्टि है। मनु के इस कथन का समर्थन गौतम, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य आदि के धर्म–सूत्रों से भी होता है कहने का तात्पर्य यह है कि वेद और धर्मशास्त्रों में बताये गये धर्म का पालन करना ही धर्म है। सदाचार परक जीवन और आत्मसन्तोष धर्म का परिणाम है। भारत वर्ष में धर्म मानव जीवन के साथ इस प्रकार सम्बद्ध है कि उसे भारतीय जीवन से पृथक कर देखना सम्भव ही नहीं है। धर्म भारतीय जीवन का मूलाधार है। सम्पूर्ण देश और समाज धर्म की

विशाल छाया में क्रियाशील रहा है। धर्म का व्यावहारिक महत्त्व कर्त्तव्य के समुचित पालन में था।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र में सातवीं सदी ई0 में आम जनमानस में व्याप्त धर्म के प्रति श्रद्धा आस्था एवं विश्वास का वर्णन किया गया है। धर्म आचरण की संहिता है अर्थात धर्म नैतिकता तथा सदाचार की ऐसी नियमावली है जिसके पालन करने से सभी प्राणियों के हितों की रक्षा होती है। हिन्दू धर्म का मूल स्रोत वेद है और वेदों में विभिन्न देवी देवताओं के प्रति अगाध श्रद्धा प्रदर्शित कि गई है और उनके पूजा को अनिवार्य माना गया है।

साहित्यावलोकन

''दशकुमारचरित'' आचार्य दण्डी की सातवीं शताब्दी की रचना है। इस समय हिन्दू धर्म में वैष्णव और शैव धर्मो का प्रचार–प्रसार पर्याप्त हो चुका था। सृष्टि की आदिशक्ति स्वरूपा देवी की पूजा का भी प्रचलन हो गया था। अतः ''दशकुमारचरित'' में विष्णु, शिव और देवी तीनों की ही उपासना के संकेत प्राप्त होते हैं। पुराणों में कहा गया हैं कि ईश्वर ब्रह्म के रूप में सृष्टि की रचना करता है, विष्णु के रूप में पालन करता है और शिव के रूप में संहार करता है।

''दशकुमारचरित'' के प्रारम्भ में दण्डी ने विष्णु के वामनावतार की स्तुति की है। उनके अनुसार भगवान वामन का चरणदण्ड आप सबका मंगल करे, जो चरणदण्ड ऐसा प्रतीत होता है मानों यह ब्रह्माण्डरूपी छत्र का आधार दण्ड है, ब्रह्मा के आश्रयस्थान कमल का नालदण्ड है पृथ्वी रुपी नौका का कूपदण्ड (पाल को सहारा देने के लिए लगाया गया बाँस) है, आकाश से पृथ्वी की तरफ झरती हुई आकाश गंगा रूपी ध्वजा का दण्ड है, तारागण रूपी पहिये का अक्षदण्ड है, भगवान के त्रैलोक्य विजय का सूचक स्तम्भ है, और इन्द्रादि देवताओं से द्वेष करने वालों के लिए साक्षात काल का दण्ड है।[1] इस मंगलाचरण से यह स्पष्ट होता है कि दण्डी विष्णु के उपासक वैष्णव धर्मानुयायी थे।

विष्णु के दशावतारों (मत्स्य, कच्छप, वाराह, वामन, नृसिंह, परशु, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि) को स्वीकार करने वाले थे। इस मंगलाचरण के द्वारा विष्णु के वामन अवतार की स्तुति की गयी है। विष्णु ने वामन (बौने) रूप में बलि नामक दैत्यराज से तीन डग (कदम) भर पृथ्वी भिक्षा माँगी थी। इस माँगी हुई पृथ्वी को नापने के लिए भगवान ने अपना पैर उठाया और एक–एक डग में एक–एक लोक नाप लिया। वामन भगवान के उस धरती मापक चरण को उनकी दिव्य एवं अलौकिक प्रभुता का साक्षात् विग्रह मानकर दण्डी ने उनकी स्तुति की है। तीनों लोकों को जीतने के लिए भगवान वामन ने तीन बार पैर फैलाया। अतः उन्हें त्रिविक्रम और त्रिभुवन जैसे विशेषणों से सम्बोधित किया गया। वामनावतार की कथा ''ऋग्वेद''[2] और ''तैत्तरीय संहिता'' [3] में विस्तार से वर्णित है।

एक अन्य स्थल पर ''दशकुमारचरित'' में 'नारायण' शब्द का उल्लेख हुआ है,[4] जो सम्भवतः विष्णु के लिए ही प्रयुक्त किया गया है। पुराणों में रामायण परमपुरुष परमात्मा को कहा गया है। नर परमपुरुष से उत्पन्न होने के कारण जल को 'नार' कहते हैं और नार (जल) ही उसका प्रथम अयन (आवास) है, इसलिए भगवान को नारायण कहते हैं।[5] वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्य पुराण में नारायण को विष्णु का स्वरूप माना गया है।[6] स्मृतियों में भी नारायण की जगत्पति के रूप में स्तुति की गयी है।[7] स्पष्ट है कि विष्णु की 'नारायण' संज्ञा भी पर्याप्त प्रचलित थी। दण्डी ने भी नारायण को सकललोकैककारण' कहकर उन्हें जगत् के कारणभूत परम पुरुष के रूप में उल्लिखित किया है।

एक स्थान पर राजकुमारी कन्दुकावती को देखकर मित्रगुप्त सोचता है – ''क्या यह लक्ष्मी है, नहीं, नहीं उन लक्ष्मी जी के हाथों में तो कमल होते हैं, इस राजकुमारी के हाथ ही कमल हैं। वे पूज्यनीया (लक्ष्मी) तथा मान्या (राजलक्ष्मी) हैं और विष्णु प्रिया तथा पूर्ववर्ती राजाओं द्वारा पूजित हैं, परन्तु यह तो (राजकुमारी) अभुक्तपूर्वा है .....''[8] इस प्रसंग में लक्ष्मी को विष्णु की पत्नी तथा राज्यलक्ष्मी (वैभव ऐश्वर्य) के रूप में वर्णित किया गया है। स्पष्ट है कि इस समय तक देवताओं के साथ उनकी पत्नियों की भी कल्पना की जाने लगी थी।

''दशकुमारचरित'' में शिव का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। सर्वप्रथम रानी वसुमती के सौन्दर्य वर्णन में दण्डी ने शिव के उस रौद्र रूप का स्मरण किया है जिसके मस्तक पर स्थित तीसरे नेत्र ने अपनी रोषाग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया था। लेखक ने कल्पना की है कि कामदेव के भस्म होने पर उनके भय से इस निर्दोष रमणी के विभिन्न अंगों ने अपने–अपने स्वरूप के अनुसार आश्रय ले लिया, यथा भ्रमरपंक्ति ने केशजाल में, चन्द्रमा ने मुखकमल में, ध्वजचित्र मत्स्ययुगल ने नेत्र आदि में।[9] यहाँ कामदहन प्रसंग की ओर संकेत किया गया है।

शिव को 'त्रयम्बक' कहा गया है। 'त्र्यम्बक' का प्रयोग ऋग्वेद के एक मन्त्र में भी हुआ शिव के लिए दण्डी ने 'महाकालनिवासीकालीविलासी' एवं 'अनश्वर महेश्वर'[10] जैसे विशेषणों का प्रयोग किया है। मालवा के राजा मानसार मगध के राजा राजहंस से एक बार पराजित होने के बाद लज्जित होकर उज्जयिनी (मालवा प्रान्त का प्रमुख नगर एवं राजधानी) में जाकर महाकाल के मन्दिर में शिव की आराधना करता है और अपने तप से शिव को प्रसन्न कर भयप्रद गदा प्राप्त कर पुनः मगधराज से युद्ध करने जाता है और विजयी होता है। गदा को 'पशुपति–शासनस्याबन्ध्यतया' कहा गया है अर्थात पशुपति की आज्ञा से अवध्यता प्रदान करने वाली वह गदा अमोघ थी। यह सर्वविदित है कि उज्जयिनी में भगवान शिव का अतिप्राचीन मन्दिर है जिसे महाकाल का मन्दिर कहा जाता है।

शिव के लिए शितिकण्ठ, पुरारि, गिरीश, गौरीपति, त्रयम्बक आदि शब्दों का स्थान–स्थान पर इस ग्रन्थ में प्रयोग हुआ। समुद्रमंथन के समय निकलने वाले कालकूट विष का पान करने से शिव की ग्रीवा नीली हो गयी थी इसीलिए उन्हें 'शितिकण्ठ' या नीलकण्ठ कहा जाता है। पुरारि या त्रिपुरारि भी शिव का विशेषण है जो उन्हें तीनों लोकों को जीतने वाला देवता सिद्ध करता है। कहा जाता है कि मय नामक राक्षस ने द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा भूलोक में क्रमशः सोने, चाँदी और लोहे के तीन नगर

बनाये थे। देवताओं की प्रार्थना पर यह तीनों पुर (नगर) शिवजी ने भस्म कर मय दानव सहित अनेक राक्षसों का विनाश किया था इसीलिए उन्हें 'पुरारि' कहा गया है। गिरि (कैलाश) पर शयन करने के कारण उन्हें गिरीशः या गिरीश कहा जाता है। गौरी (पार्वती) के पति होने के कारण 'गौरापति' की संज्ञा भी शिव को प्राप्त है। 'त्र्यम्बक' का सामान्य अर्थ त्रिनेत्रयुक्त है अर्थात् तीन नेत्र धारण करने के कारण है।[11]

उपर्युक्त प्रसंगों एवं विशेषणों से यह प्रतीत होता है कि उस समय शिव का महत्व समाज में अत्यधिक बढ़ गया था। उनकी उपासना से लोग अभीष्ट प्राप्त करते थे तथा शिव से सम्बद्ध अनेक पौराणिक आख्यान और किंवदन्तियाँ लोकप्रिय हो गयी थीं, जिनसे सम्बद्ध उनके विशेषणों से भी लोग परिचित थे।

विष्णु और शिव के पश्चात देव वर्ग में जिसकी उपासना का महत्व अधिक बढ़ रहा था वह थी देवी दुर्गा। हिन्दू धर्म में देवी की उपासना अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित रही है। देवी को शक्ति का प्रतीक माना गया है। सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया में नारी का योगदान स्पष्टतः अभूतपूर्व है। शक्ति का प्रारम्भिक रूप शिव की पत्नी उमा अथवा पार्वती है जो जगजननी कही जाती है।[12] शक्ति की उपासना करने वाले शाक्त कहलाते हैं। देवी की उपासना का प्रचलन बढ़ने के साथ–साथ उनके अनेक नाम भी कल्पित हुए। काली, चामुण्डा देवी, शिवानी, रुद्राणी, भवानी आदि नाम उनके शैव सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं। इसके साथ ही लक्ष्मी, वैष्णवी, ब्राह्मी, इन्द्राणी आदि विभिन्न नाम भी उनको प्रदान किये गये जो उनके उत्तरोत्तर वृद्धिशील स्वतंत्र अस्तित्व को स्पष्ट करते हैं, न कि दूसरे देवताओं के प्रभाव को। 'वाग्देवी' सरस्वती से भी उनका सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तथा उन्हें बुद्धि और प्रज्ञा की देवी माना जाता है।

''दशकुमारचरित'' में दामलिप्त नगर में देवी के विशाल मन्दिर का उल्लेख है। यहाँ विन्ध्यवासिनी अष्टभुजा देवी का दुर्गा मन्दिर भी भक्ति के प्रभाव को ही प्रदर्शित करने वाला है। मित्रगुप्त को एक युवक बताता है कि इस सुह्मप्रान्त के अधिपति सन्तानहीन थे। उन्होंने इस मन्दिर की देवी से प्रार्थना की और संकल्प लिया कि यदि आज रात देवी के दर्शन न हुए तो कल उठूँगा भी नहीं। उस रात देवी ने स्वप्न में आकर उन्हें आदेश दिया कि तुम्हारे एक पुत्र और पुत्री होगी। पुत्र तुम्हारे पुत्री के पति का अनुजीवक होकर रहेगा। तुम्हारी पुत्री को सातवें वर्ष से विवाहपर्यन्त प्रत्येक कृतिका नक्षत्र में कन्दुकनृत्य से मेरी पूजा करनी होगी। इसी प्रकार की पूजा से उसे सुयोग्य और गुणी वर (पति) प्राप्त होगा। उसके अभिलषित वर से उसका विवाह कर देना।[13] ''दशकुमारचरित'' में देवी को इसीलिए विन्ध्यवासिनी संज्ञा से ही उल्लिखित किया गया हैं।

''दशकुमारचरित'' के विश्रुत प्रसंग में भी श्मशान भूमि के पास दुर्गा जी के मन्दिर का उल्लेख है।[14] इस मन्दिर में आश्रय लेकर वह स्वयं को चन्डवर्मा–प्रचण्ड वर्मा की मृत्यु के सम्बन्ध में निर्दोष होने का विश्वास प्रजा को दिला देता है और मंजुवादिनी के भाई को प्रजा के समक्ष देवी की कृपा पाने और उसके पुत्र के समान मानने की बात कहता है। वह बताता है कि विन्ध्यवासिनी देवी ने मेरे द्वारा तुम सबको आदेश दिया है कि ''मैंने कृपा करके व्याघ्र रूप धारण कर कुमार की रक्षा की है। आज मैं इसे तुम्हारे हाथों में सौंप रही हूँ। आज से तुम इसे मेरा पुत्र समझो।[15] इस प्रकार देवी का सहारा लेकर विश्रुत मंजुवादिनी के भाई भाष्करवर्मा को पिता का राज्य दिलाता है और स्वयं मंजुवादिनी से विवाह करता है।

भगवान विष्णु, शिव और देवी दुर्गा के अतिरिक्त ''दशकुमारचरित'' में एक स्थान पर ब्रह्मा जी का भी उल्लेख हुआ है। ब्राह्मण मातंग को शिव स्वप्न में निर्देश देते हें कि दण्डकारण्य के बीच से जाने वाली नदी के तट पर सिद्ध एवं साधकों से आराध्यमान स्फटिकलिंग के पीछे की भगवती की पदपंक्ति से चिन्हित पाषाण के पास ब्रह्मा जी के मुख की तरह कोई बिल है, उस बिल में घुसकर वहाँ पड़े हुए ताम्रशासन को ब्रह्मा जी के शासनपत्र की तरह ले लो और उसमें लिखी हुई विधि को भाग्य–विजय की भांति स्वीकार कर तुम पाताल लोक के अधीश्वर हो जाओ।[16]

इस प्रसंग से कई बातें ज्ञात होती हैं। ब्राह्मण शिव भक्त था अतः शिव ने उसे स्वप्न में भाग्यवृद्धि का सन्देश दिया। नदी के तट पर स्फटिक का शिवलिंग भी था जिसे सिद्ध साधक आदि पूजते थे। किसी शिला पर भगवती के पदचिन्ह भी अंकित थे। यह स्थान दण्डकारण्य वन के समीप बहने वाली नदी के किनारे था। जयशंकर मिश्र ने लिखा है कि ''शतरुद्रिय से स्पष्ट होता है कि रुद्र अथवा शिव मनुष्यों की बस्ती से दूर रहते थे। वह चोरो, डाकुओं और ब्रात्यों के पूज्य देवता थे''।[17] ''मातंग ब्राह्मण भी जंगल में डाकू और लुटेरों के साथ रहता था। देवी के चरण चिन्ह भी यह स्पष्ट करते हैं कि हिमालय की पुत्री और पर्वत प्रदेश से सम्बद्ध होने के कारण देवी की पूजा पर्वतीय प्रदेशों में तीव्रता से फैली। इसके साथ ही पुलिन्द, शबर, बर्बर जैसी जंगली जातियों की भी वे आराध्य देवी बनी।[18] स्पष्ट है कि वन प्रदेश में शिवलिंग और देवी के पाषाण पर अंकित चरणचिन्ह शबरों द्वारा पूजित होते थे।

''दशकुमारचरित'' में वैष्णव शैव और शाक्त धर्म के उस समय प्रचलित होने के संकेत उपर्युक्त प्रसंगों से मिल जाते हैं। जैन अथवा बौद्ध धर्मों के भी कतिपय उल्लेख मिलते हैं। परन्तु उनसे यह स्पष्ट नहीं होता कि उस समय समाज में उनका कितना प्रचार–प्रसार था। बल्कि जो उल्लेख मिले भी हैं वे उनकी पतनोन्मुख अवस्था अथवा समाज में निन्दनीय और असहाय स्थिति के ही द्योतक है।

जैन धर्म से सम्बन्धित एक प्रसंग अपहारवर्मा के कथानक में आता है। अपहारवर्मा ने मार्ग के किनारे एक जैन विहार में एक अत्यन्त कुरुप, दीन मलिन और रोते हुए क्षपणक (जैन साधु) को देखा। उसके बारे में पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह एक सेठ का पुत्र था। अत्यन्त धनी होने के कारण धनलोभी काममंजरी नामक वेश्या ने उसे अपना प्रेमी बनाया और धीरे–धीरे उसका सर्वस्वहरण कर उसे कौपीनावशेष बना दिया। सभी लोगों ने उसको धिक्कारा और उसका उपहास किया। लज्जित होकर वह जैन मठ में आ गया और एक जैन मुनि से मोक्ष का

उपदेश पाया।[19] अन्त में वह कहता है कि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि वेश्याओं द्वारा तिरस्कृत पुरुषों के लिए यह वेश (निर्वस्त्र) ही उचित है अतः कौपीन भी त्याग दी है।[20]

इस प्रसंग से यह ज्ञात होता है कि संसार में छले गये लोग भौतिक सुखों के नष्ट हो जाने पर मजबूरी में क्षपणक बन जाते थे। यह भी ज्ञात होता है कि उस समय जैन मठ या विहार भी थे। जिसमें जैन साधु रहते थे और नये आये व्यक्ति को जैन–धर्म का उपदेश देकर निहंग बनने को प्रेरित करते थे। बाद में अपहारवर्मा धर्मरत्न भस्त्रिका को काममंजरी को देता है जिसके माध्यम से धन प्राप्त कर वह उस क्षपणक को सम्मानसहित दे देती है। अपहारवर्मा कहता है कि – ''वह क्षपणक भी किसी प्रकार से अर्हन सिद्धान्त की वेदनाओं से मुक्त होकर मेरे आदेशों से प्रसन्न होकर स्वधर्म (वैदिक धर्म) में लौटकर आ गया।[21]

''दशकुमारचरित'' से बौद्ध धर्म के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती है। केवल दो बौद्ध–सन्यासिनियों के उल्लेख हैं। एक बौद्ध सन्यासिनी धर्मरक्षिता काममंजरी वेश्या की प्रधान दूती थी,[22] जिसके द्वारा अपहारवर्मा काममंजरी को उसकी बहन रागमंजरी का विवाह अपहारवर्मा से करने के लिए राजी कर लेता है। दूसरी बौद्ध सन्यासिनी को श्मशानरक्षक कलहकण्टक शवों के कफन आदि देकर अपने अनुकूल कर लेता है और फिर अनन्तकीर्ति नामक वैश्य की विवाहित पत्नी को सन्यासिनी द्वारा वाग्जाल में फँसाकर पति और नगरवासियों से तिरस्कृत कराके विवाह कर लेता है।[23]

निष्कर्ष

इन प्रसंगों से यह प्रतीत होता है कि दण्डीकालीन समाज में हिन्दू धर्म ही सामान्यतः प्रचलित धर्म था जिसमें विष्णु, शिव और दुर्गा की उपासना को अधिक महत्व दिया जाता था। इस समय हिन्दू धर्म में वैष्णव और शैव धर्मो का प्रचार–प्रसार पर्याप्त हो चुका था। सृष्टि की आदिशक्ति स्वरूपा देवी की पूजा का भी प्रचलन हो गया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि दण्डीकालीन समाज में वैष्णव, शैव, शाक्त आदि हिन्दू धर्म अपने चरमोत्कर्ष पर थे तथा जैन और बौद्ध धर्म के ह्रासोन्मुख स्थिति के भी स्पष्ट संकेत हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *दशकुमारचरित मंगलाचरण, पृ0 1–4*
2. *ऋग्वेद 1/54/1*
3. *तैत्तरीय संहिता 2/1/3/1*
4. *दशकुमारचरित, पूर्वपीठिका प्रथमोच्छ्वास पृ0 14*
5. *विष्णु पुराण 1/4/16*
6. *वायुपुराण 23/95 , ब्रह्माण्डपुराण 4/10/34 , मत्स्यपुराण 132/4*
7. *विष्णु स्मृति 98/ 98–101*
8. *दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, षष्ठोच्छ्वास, पृ0 389*
9. *दशकुमारचरित, पूर्वपीठिका प्रथमोच्छ्वास, पृ0 7*
10. *दशकुमारचरित, पूर्वपीठिका, प्रथमोच्छ्वास, पृ0 19*
11. *ऋग्वेद 7/53/14*
12. *जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 714*
13. *दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, षष्ठोच्छ्वास, पृ0 383–84*
14. *दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, अष्टमोउच्छ्वास, पृ0 48*
15. *दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, अष्टमोच्छ्वास, पृ0 50*
16. *दशकुमारचरित पूर्वपीठिका द्वितीयोच्छ्वास, पृ0 56*
17. *जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 694*
18. *जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 719*
19. *दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, द्वितीयोच्छ्वास पृ0 178–181*
20. *दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, द्वितीयोच्छ्वास पृ0 181–182*
21. *दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, द्वितीयोच्छ्वास, पृ0 213–14*
22. *दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, द्वितीयोच्छ्वास पृ0 209*
23. *दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, षष्ठोच्छ्वास, पृ0 443–450*